International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 09-10

केदारनाथ सिंह के काव्य में पर्यावरणीय चिंता

सुशील कुमार तिवारी

शोध छात्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

प्रकृति और जीवन के उल्लास के गीतकार के रूप में कवि जीवन की शुरुआत करने वाले केदारनाथ सिंह की काव्य संवेदना अत्यंत विशिष्ट रही है। वे अपने समय के पारखी कवि हैं और उनका कलबोध ही उनके काव्य को हमेशा प्रांसंगिक बनाए रखता है। गीतकार के उल्लास से लेकर नीरस जीवन एवं अस्तित्व की खोज तक की उनकी कविता में विराट स्वरूप विस्तार दिखाई देता है।

केदारनाथ सिंह समय के प्रतिबद्ध कवि हैं और यही कारण है कि अपने समय कि चुनौतियों से दो-दो हाथ वे अपनी कविता के माध्यम से करते हैं। इक्कीसवीं सदी चुनौतियों का एक बड़ा अंबार लेकर हमारे सामने प्रस्तुत हुई है। जीवन एवं पर्यावरण का संकट इस सदी की कुछ प्रमुख चुनौतियों मे से हैं।

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण एवं इसके चलते फैलने वाली विभिन्न भयावह व्याधियों ने मनुष्य के अस्तित्व को संकट मे डाल दिया है। औद्योगीकरण, पूंजीवाद, भूमंडलीकरण एवं बढ़ती उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ आदि कुछ ऐसे तत्व है जिन्होने पर्यावरण संकट को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्राकृतिक तत्वों के अधिकाधिक शोषण के चलते प्रकृति को अत्यंत क्षति पहुंची है, पूंजीवाद के प्रसार एवं अत्यधिक लाभ कमाने की इच्छा मे मनुष्य ने प्रकृति के साथ भयंकर खिलवाड़ किया है। पूंजीवादी औद्योगिक विकास ने प्रकृति के विभिन्न संसाधनो का इतना अधिक शोषण किया है जिसकी क्षतिपूर्ति प्रकृति द्वारा अपने पुनर्नवीकरणीय चक्र द्वारा कर पाना आसान नागी रहा। मनुष्य ने अपनी सुख सुविधाओं के लिए प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने की जो नीति अपनायी है उसके भयंकर परिणाम की ओर संकेत करते हुए एंगील्स ने अपनी पुस्तक 'डायनेसि ऑफ नेचर' मे स्पष्ट लिखा है "हमको इस बात से संतुष्ट नहीं होना चाहिए की मनुष्य प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की प्रत्येक विजय के लिए प्रकृति हमसे बदला लेती है"।

वर्तमान पर्यावरण संकट की जड़ उत्पादन की प्रणाली और उसके द्वारा उत्पन्न उपभोक्तावादी जीवन पद्धति में निहित है। 'वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट' द्वारा प्रकाशित 'हाउ मच इज़ इनफ़' नामक पुस्तक में एलन थींग बरनिंग ने इसका खुलासा करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भूमंडलीय पूंजीवाद और उसमे फैले हुए बाजार ने लोगों के सोचने समझने के ढंग को बिलकुल बादल दिया है। अधिक से अधिक वस्तुओं को रखने को रखने एवं उपभोग करने की प्रवृत्ति (जिसे वे अपनी शान समझते हैं), तथा अत्यधिक उपभोग की मानसिकता को सामाजिक प्रतिष्ठा के ताने-बाने में बुन दिया गया है। नित्य नयी – नयी वस्तुओं का उत्पादन और उन्हें खरीदने की मची होड़ के बीच किसी को यह सोचने – समझने का समय नहीं है कि इस प्रवृत्ति के चलते मानव जाति के भविष्य पर कितना बड़ा संकट आ गया है।

केदारनाथ सिंह मिटते पर्यावरण को लेकर अपनी कविताओं मे खासे चिंतित नजर आते हैं। वें कविताओं के जरिये इस प्रश्न को समाज के बीच बार – बार उठाते हैं। नीम के झड़ते पत्तों से जिस कवि में उदासी का आलम छा जाता हो उसके लिए यह स्वाभाविक भी है कि वह इस संकट पर एक पुरजोर संघर्ष कि कोशिश करे।

केदारनाथ सिंह अपने विभिन्न कविता संग्रहों में यहाँ से देखो में (पृथ्वी रहेगी, कस्बे कि धूल, बाजार, वापसी), अकाल में सारस (अकाल में दूब, अकाल में सारस, सूर्यास्त के बाद एक अंधेरी बस्ती से गुजरते हुए, ओ मेरी उदास पृथ्वी, अड़ियल सांस), बाघ, तालस्ताय और साइकिल (पानी की प्रार्थना, पानी था मैं, भुतहा बाग) आदि में पर्यावरण के भयावह संकट का साक्षात्कार करवाते हैं। इन कविताओं मे कवि ने पर्यावरण संकट को एक भावात्मक विकलता के साथ व्यक्त किया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि कवि मात्र आक्रोश नहीं प्रकट करता अपितु इसके कारणो कि पड़ताल करके हमारे सामने पूंजी और सत्ता के गठजोड़ का भी खुलासा करता है।

पानी की प्रार्थना कविता में पानी पूरी शिद्दत के साथ प्रभु (सत्ता संचालकों) के सामने एक दिन का हिसाब लेकर खड़ा होता है और उस एक दिन के हिसाब में लुप्त होने के कगार पर पहुंचे पानी ने अपने पीछे कार्य कर रहे समूचे सत्ता – पूंजीवादी तंत्र की पोल खोल देता है – "पर यहाँ पृथ्वी पर मै / यानि आपका मुँहलगा पानी / अब दुर्लभ होने के कगार तक / पहुँच चुका हूँ / पर चिंता की कोई बात नहीं / यह बाज़ारों का समय है, और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से मैं हमेशा मौजूद हूँ" [1]।

बाजार में पानी की उपलब्धता पर केदारनाथ सिंह प्रश्न खड़े करते है। उस रहस्यमय स्रोत कि ओर इशारा करते हैं जहां से, लुप्त होने के कगार पर पहुँच जाने के बावजूद पानी बाजार में पहुँच रहा है। कवि यहाँ पूंजीपति और सत्ता के गठजोड़ की ओर भी इशारा करता है। कहीं ऐसा तो नहीं की पानी को बाजार की वस्तु बनाने के लिए ही उसके प्राकृतिक स्रोतों को नष्ट किया जा रहा है। इस ओर कवि का यह इशारा है कि "पर अपराध क्षमा हो प्रभु / और यदि मैं झूठ बोलूँ /तो जलकर हो जाऊँ राख़ / कहते हैं इसमें / आपकी भी सहमति है" [2]।

केदारनाथ सिंह बिंबों के कवि है और किसी भी विषय पर बयानबाजी के स्थान पर उसे मूर्त रूप मे सामने लाते हैं। पर्यावरण की समस्या तथा उससे उपजे दृश्य को हमारे सामने रखते हैं एक सूखे के माध्यम से- "भयानक सूखा है / पक्षी छोडकर चले गए हैं / पेड़ों को / बिलो को छोडकर चले गए हैं चींटे चीटियां" [3]। (अकाल मे दूब) इस पूरे दृश्य बिम्ब के जरिये वे पर्यावरण समस्या एवं उससे उपजी सूखे जैसी स्थिति और उससे उपजे मानव अस्तित्व पर संकट की ओर आगाह करते हैं।

बाघ कविता संग्रह एक तरह से उनका पर्यावरणीय विमर्शों का काव्य है। यह कवि के अपने समय को कविता मे मूर्तिमान कर देने वाली क्लैसिक रचना है। यहाँ कवि अपने पूरे वर्तमान को बाघ जैसे संश्लिष्ट चरित्र के रूप मे लेकर उपस्थित हुआ है। पर्यावरण का मुद्दा यहाँ भी कवि पूरी संजीदगी से उठाया है। बाघ का जंगल के बजाय अखबार की खबर बन जाना, खिलौने के रूप मे शेष रह जाना, उसके अस्तित्व के संकट की ओर इशारा है जैसा कि कवि लिखता है "किसी ने देखा नहीं /अंधेरे में सुनी नहीं किसी ने / उसके चलने कि आवाज / गिरि नहीं थी किसी भी सड़क पर खून छोटी सी बूंद पर सबको विश्वास है कि/ सुबह के अखबार में छपी खबर गलत नहीं हो सकती" [4]। यह वास्तविकता का एक नमूना है जहां प्राणी समाप्त हो रहे है और उनका नाम मात्र बचा है और कथाओं से भरे इस संसार मे वे भी एक कथा के रूप मे सुशोभित होंगे। आज विकास के नाम पर हम

जिस कदर अंधाधुंध जंगल नष्ट करते जा रहे है उससे जंगली जीवों को जब रहने के स्थान नहीं रहेंगे तो - "जब छिपने को नहीं मिलती / कोई ठीक-ठाक जगह / तो वह धीरे से उठता है / और जा बैठ जाता है / किसी कथा की ओट में" [5]। यह एक सच्चाई है जिसे कवि ने बहुत ही मार्मिकता से रेखांकित किया है। जंगलों के मिटते जाने से जानवरों का अस्तित्व भी अब कथाओं में ही शेष रहेगा। हम कथा में ही बाघ सुन पाएंगे और फोटो मे उसे देखेंगे, यह इक्कीसवीं सदी का अद्भुत आख्यान होगा।

केदारनाथ सिंह ने बाघ कविता में पर्यावरणीय संकट का एक कारण मशीनीकरण में भी खोजा है। मशीने जहां आज की प्रगति की सूचक हैं वहीं पर्यावरण को नष्ट करने में भी उनका काफी अहम योगदान है। यही नहीं मशीनों ने तो मानव का विकल्प बनकर मनुष्य को भी विस्थापित किया है। मशीनीकरण के पीछे के इस स्याह सच को सामने लाने का कार्य वे बाघ के पांचवे खंड में करते हैं। बाघ ने ट्रैक्टर देखा – 'एक सुंदर और विशाल ट्रैक्टर / वहाँ खेत में खड़ा था'। इस हरित क्रांति के सूचक आविष्कार के प्रति व्यक्ति का उल्लसित होना स्वाभाविक है और इसी खुशी में भई वाह! अद्भुत! जैसे शब्द कह उठता है। एक इमेजिनेशन कर लेता है, यह हमारा सामान्य है की हम हर वस्तु को उत्पादन के आधार पर देखते हैं। किन्तु कुछ समय बाद ही उसका स्याह पक्ष भी सामने आने लगता है। यंत्रीकरण प्रकृति से लेकर मनुष्य तक के विस्थापन का कारण बनता चला जाता है।

हमने प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का जमकर अपव्यय किया है इसकी ओर केदारनाथ सिंह बाघ और लोमड़ी के संवाद के माध्यम से संकेत करते हैं –

"क्या आदमी लोग पानी पीते हैं? / 'पीते हैं' लोमड़ी ने कहा - / पर वे हमारी तरह / सिर्फ सुबह शाम नहीं पीते / दिन–भर में जितनी बार चाहा / उतनी बार पीते हैं" [6]।

यही मूल समस्या है।हम सुविधाओं के पीछे पड़कर सीमाओं को ध्यान रखना भूल जाते हैं जिसकी ओर केदारनाथ सिंह संकेत करते हैं –'पर इतना पानी क्यों पीते हैं आदमी लोग?' क्या उपभोग की कोई सीमा नहीं? हम क्यों प्रकृति का इतना शोषण कर डाले कि वह आने वाली पीढ़ी के लिए और यहाँ तक कि हमारे लिए अभिशाप बन जाए।

प्रकृति का विनाश करने में हम इस कदर लगे हुए हैं कि आज कोई भी पशु-पक्षी सुरक्षित नहीं है। "मैं मार डाला जाऊंगा / मार डाला जाऊंगा – सोचता रहा वह" मौत के साये में जीते वन्य प्राणियों का यह एक मार्मिक चित्र है। आज हमने अपने उपभोग के लिए जानवरों का अस्तित्व ही संकट मे दाल दिया है। विभिन्न पशु-पक्षियों का विलुप्त होते जाना इसका प्रमाण है।

प्रकृति के जीवों को पिंजरों चिड़ियाघरों में कैद करके हमने उन्हें उनके मूल आवास से विस्थापित कर दिया है और प्रकृति के नैसर्गिक संपर्क से कट जाने के कारण आए दिन विभिन्न प्राणियों की प्रजाति लुप्त होती जा रही है – "हवा का / एक सुगंध भरा झोंका आया /और बाघ जो कि उस समय कहीं पिंजरे में था / जरा सिहरा / शायद जंगल में आम पाक रहे हैं / उसने सोचा" [7]। कवि को डर है कि एक दिन कहीं ऐसा न हो कि हम सारी प्रकृति को ही अपने स्वार्थों के लिए स्वाहा कर लें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी अगली पीढ़ी के लिए कुछ बचे ही न।

उन्हे इस बात का डर है कि "एक दिन / नष्ट हो जाएंगे सारे के सारे बाघ / कि जब कोई दिन नहीं होगा / और पृथ्वी के सारे के सारे बाघ धरे रह जाएंगे / बच्चों कि किताबों में / मुझे भी डर है" [8]।

कवि को डर है कि इस प्रकार के आचरण द्वारा कहीं हम अपने अस्तित्व को समाप्त तो नहीं कर रहे हैं। वह लिखते हैं कि – "पर मुझे एक और भी डर है / बाघ से भी ज्यादा चमकता हुआ डर / कि हाथ कहाँ होंगे / आंखे कहाँ होंगी जो पढ़ेगी किताबें / प्रेस कहाँ होंगे जो उन्हें छापेंगे / शहर कहाँ होंगे / जहां ढलेंगे टाइप" [9]। क्योकि सारे तो मनुष्य के अस्तित्व पर निर्भर करते है जब इन्हें बनाने वाले हाथ ही नहीं रहेंगे तब ये सब कहाँ ?

केदारनाथ सिंह इस पूरे संकट कि ओर समाज को आगाह करते है। उन्हीं के शब्दों में 'यह कविता नहीं आग कि ओर इशारा है' जिस की तरफ ध्यान न देने पर हम खुद को ही जला डालेंगे।

संदर्भ

१. सिंह, केदारनाथ (2005). तालस्ताय और साइकिल,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-9।
२. वहीं पृष्ठ संख्या- 9।
३. सिंह, केदारनाथ (1988). अकाल में सारस,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 20।
४. सिंह, केदारनाथ (2009). बाघ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 11।
५. वहीं, पृष्ठ संख्या- 15।
६. वहीं, पृष्ठ संख्या- 24।
७. वहीं, पृष्ठ संख्या- 49।
८. वहीं,पृष्ठ संख्या- 51।